बिभूति भूषण चटर्जी

बनाम

बिहार राज्य

(पी. बी. गजेन्द्रगडकर और के. सुब्बा राव, न्यायमूर्ति)

न्यायालय शुल्क—निम्न न्यायालयों की प्रमाणित प्रतियाँ जो आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन के साथ दायर की गई हों—क्या उन पर न्यायालय शुल्क देय है—न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 (1870 का VII), धारा 4, अनुसूची I, अनुच्छेद 9।

अपीलकर्ता, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अधीन कार्यवाही में दंडाधिकारी द्वारा उसके विरुद्ध पारित आदेशों तथा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा उनकी पुष्टि किए जाने से व्यथित था, इस विषय को आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन द्वारा पटना उच्च न्यायालय के समक्ष ले गया और उसके साथ अधीनस्थ दोनों न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों की प्रमाणित प्रतियाँ बिना किसी न्यायालय शुल्क के दायर कीं। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उस न्यायालय में प्रचलित प्रथा, जिसके अनुसार उक्त प्रमाणित प्रतियों पर न्यायालय शुल्क देय था, सही थी और न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की अनुसूची I के अनुच्छेद 9 के प्रावधानों द्वारा उचित ठहराई गई थी। अपीलकर्ता ने अन्य बातों के साथ यह तर्क किया कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को अधिनियमित करते समय विधानमंडल द्वारा अपनाई गई नीति यह थी कि अभियुक्त व्यक्ति को प्रासंगिक दस्तावेज निःशुल्क उपलब्ध कराए जाएँ, और प्रमाणित प्रतियों पर न्यायालय शुल्क देने की अपेक्षा करना इस नीति के साथ असंगत होगा।

यह *अभिनिर्धारित* किया गया, कि न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 4 के अधीन, आपराधिक निर्णयों अथवा आदेशों की वे प्रतियाँ, जिन्हें उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया जाना अभिप्रेत हो, अधिनियम की अनुसूची I के अनुच्छेद 9 द्वारा विहित न्यायालय शुल्क मुद्रांक से युक्त होनी चाहिए।

जेम्स पॉल अलेक्ज़ेन्डर बनाम जेम्स आर्थर एडवर्ड्स, आई.एल.आर. 1953 टी.-सी. 69, अनुमोदित।

यह भी *अभिनिर्धारित* किया गया, कि न्यायालय शुल्क अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, उन नीतियों के संबंध में काल्पनिक विचार, जिन पर दंड प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधान आधारित हो सकते हैं, प्रासंगिक नहीं होंगे।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1957 का आपराधिक अपील संख्या 199 सितंबर के फैसले और आदेश से अपील -

पटना उच्च न्यायालय द्वारा 1957 का आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 924 में 25 सितम्बर, 1957 को पारित निर्णय तथा आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलकर्ता की ओर से *पी. के. चटर्जी।*

उत्तरदाता की ओर से *एन. एस. बिंद्रा तथा डी. गुप्ता।*

1959, 6 अक्टूबर। न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदान किया गया—

गजेन्द्रगडकर न्यायमूर्ति—पटना उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्र के आधार पर प्रस्तुत यह अपील न्यायालय शुल्क अधिनियम VII सन् 1870 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है) की अनुसूची I के अनुच्छेद 9 की व्याख्या से संबंधित एक संक्षिप्त प्रश्न उठाती है। अपीलकर्ता बिभूति भूषण चटर्जी के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अधीन भागलपुर के प्रथम श्रेणी दंडाधिकारी के न्यायालय में कार्यवाही संस्थित की गई थी; इस कार्यवाही में विद्वान दंडाधिकारी ने अपीलकर्ता को 5,000 रुपये के बंधपत्र तथा समान राशि के दो प्रतिभुओं के साथ एक वर्ष की अवधि तक शांति बनाए रखने का आदेश दिया। अपीलकर्ता ने इस आदेश को भागलपुर के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपील द्वारा चुनौती दी। अपीलीय न्यायाधीश ने विद्वान दंडाधिकारी के निर्णय से सहमति व्यक्त की और अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील निरस्त कर दी गई। तत्पश्चात अपीलकर्ता बिभूति भूषण चटर्जी ने इस विषय को 1957 का आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन संख्या 924 द्वारा पटना

उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान कार्यवाही में अधीनस्थ दोनों न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों की प्रमाणित प्रतियाँ अपीलकर्ता द्वारा अपने पुनरीक्षण आवेदन के साथ बिना किसी न्यायालय शुल्क के दायर की गई थीं। इसके पश्चात अपीलकर्ता को दोनों आदेशों पर क्रमशः 52.75 रुपये तथा 50.75 नए पैसे मूल्य का न्यायालय शुल्क अदा करने के लिए कहा गया। अपीलकर्ता ने इस आदेश की वैधता को चुनौती दी, और परिणामस्वरूप उसका पुनरीक्षण आवेदन इस प्रश्न के निर्णय हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष रखा गया कि क्या उक्त दोनों प्रमाणित प्रतियों पर मुद्रांक प्रतिवेदक के निर्देशानुसार न्यायालय शुल्क देय था। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि मुद्रांक प्रतिवेदक द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन उस प्रथा के अनुरूप था जिसका पालन उच्च न्यायालय इस विषय में करता आया था और उक्त प्रथा अनुच्छेद 9 के प्रावधानों द्वारा पूर्णतः उचित ठहराई गई थी। परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता द्वारा उठाई गई यह आपत्ति कि दोनों आदेशों पर कोई मुद्रांक चिपकाने की आवश्यकता नहीं है, अस्वीकार कर दी गई और उसे आदेश की तिथि से दो सप्ताह के भीतर आवश्यक मुद्रांक चिपकाने का निर्देश दिया गया। इसके पश्चात अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 134(1)(ग) के अधीन उच्च न्यायालय से प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया और वह प्राप्त कर लिया कि अपीलकर्ता का मामला इस न्यायालय में अपील हेतु उपयुक्त है। इसी प्रमाणपत्र के आधार पर अपीलकर्ता इस न्यायालय में उपस्थित हुआ है; और उसकी ओर से श्री पी. के. चटर्जी ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण अनुच्छेद 9 की यथार्थ व्याख्या के अनुरूप नहीं है। हमें बताया गया है कि यह अपील एक परीक्षण वाद के रूप में लड़ी जा रही है ताकि पटना उच्च न्यायालय में प्रचलित संबंधित प्रथा की वैधता की परीक्षा की जा सके।

श्री चटर्जी का तर्क है कि अनुच्छेद 9 की व्याख्या करते समय उस नीति को ध्यान में रखना प्रासंगिक होगा जिसे विधानमंडल ने अभियुक्त व्यक्तियों को संहिता के अधीन आवश्यक प्रतियाँ उपलब्ध कराने के प्रश्न से संबंधित दंड प्रक्रिया संहिता के महत्वपूर्ण

प्रावधानों को अधिनियमित करते समय जानबूझकर अपनाया है। संहिता की धारा 173(4) यह अपेक्षा करती है कि जाँच अथवा विचारण के प्रारम्भ से पूर्व थाना प्रभारी अधिकारी उपधारा (1) के अधीन अग्रेषित प्रतिवेदन की तथा धारा 154 के अधीन अभिलिखित प्रथम सूचना प्रतिवेदन की और उन सभी अन्य दस्तावेजों अथवा उनके प्रासंगिक अंशों की, जिन पर अभियोजन निर्भर रहने का प्रस्ताव करता है, प्रतियाँ अभियुक्त को निःशुल्क उपलब्ध कराए अथवा उपलब्ध कराना सुनिश्चित करे। धारा 207क, उपधारा (3) यह अपेक्षा करती है कि जब अभियुक्त दंडाधिकारी के समक्ष उपस्थित हो अथवा प्रस्तुत किया जाए, तब दंडाधिकारी स्वयं को इस बात से संतुष्ट करे कि धारा 173(4) की अपेक्षाओं का विधिवत पालन किया गया है। धारा 210, उपधारा (2) के अधीन, जैसे ही अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निर्धारित किया जाता है, उसे पढ़कर तथा समझाकर सुनाया जाएगा और यदि अभियुक्त ऐसा अपेक्षित करे तो उसकी एक प्रति उसे निःशुल्क दी जाएगी। धारा 251क, उपधारा (1), यह अपेक्षा करती है कि यदि धारा 173(4) का पालन नहीं किया गया है, तो दंडाधिकारी निर्देश देगा कि संबंधित दस्तावेज अभियुक्त को निःशुल्क उपलब्ध कराए जाएँ। इसी प्रकार धारा 371(1) यह उपबंध करती है कि अभियुक्त के आवेदन पर, समन वाद के अतिरिक्त प्रत्येक मामले में निर्णय की एक प्रति निःशुल्क दी जाएगी; तथा धारा 548 के परंतुक द्वारा न्यायालय को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि न्यायालय यह संतुष्ट हो कि ऐसा करने के लिए कोई विशेष कारण विद्यमान है, तो वह अभियुक्त को न्यायाधीश द्वारा निर्णायक मंडल को दिए गए निर्देश की अथवा किसी आदेश, कथन अथवा अभिलेख के किसी अन्य भाग की प्रति निःशुल्क उपलब्ध करा सकता है। तर्क यह है कि विधानमंडल की नीति अभियुक्त व्यक्ति को प्रासंगिक दस्तावेज निःशुल्क उपलब्ध कराने की है, और अनुच्छेद 9 के अधीन उससे आपराधिक आदेशों तथा निर्णयों की प्रमाणित प्रतियों पर न्यायालय शुल्क की अपेक्षा करना इस नीति के साथ असंगत होगा।

यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि न्यायालय शुल्क अधिनियम के प्रावधानों की

कठोर व्याख्या वादकारी के पक्ष में की जानी चाहिए और किसी दस्तावेज को न्यायालय शुल्क से प्रभारित तब तक नहीं माना जाना चाहिए जब तक यह स्पष्ट रूप से सिद्ध न हो जाए कि वह अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के अंतर्गत आता है। दूसरे शब्दों में, अपीलकर्ता का मामला यह है कि उसके वर्तमान तर्क का निर्णय करते समय हमें अनुच्छेद 9 की उदार व्याख्या अपनानी चाहिए। हम इन दोनों तर्कों से प्रभावित नहीं हैं।

दंड प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधान जिस किसी भी नीति पर आधारित हों, उक्त नीति पर आधारित कोई भी विचार अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करने में किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकता। अधिनियम की धारा 4 यह उपबंध करती है कि अधिनियम से संलग्न प्रथम अथवा द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित तथा शुल्क से प्रभारित किसी भी प्रकार का कोई दस्तावेज किसी न्यायालय में तब तक दायर, प्रदर्शित, अभिलिखित, प्राप्त अथवा प्रदान नहीं किया जाएगा, जब तक उस दस्तावेज के संबंध में अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों द्वारा विहित राशि का शुल्क अदा न कर दिया गया हो। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रत्येक वह दस्तावेज जो धारा 4 के क्षेत्राधिकार में आता है, उस पर प्रासंगिक प्रावधान द्वारा विहित न्यायालय शुल्क लगाया जाना आवश्यक है; और इसलिए यह प्रश्न कि कोई विशेष दस्तावेज धारा 4 के अंतर्गत आता है अथवा नहीं तथा परिणामस्वरूप उस पर विहित न्यायालय शुल्क देय है अथवा नहीं, इसका निर्णय केवल अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के संदर्भ से ही किया जाना चाहिए। उक्त प्रावधानों की व्याख्या करते समय दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की नीति के संबंध में कोई भी काल्पनिक विचार किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते।

इसी प्रकार, अनुच्छेद 9 की उदार व्याख्या के सिद्धांत पर निर्भर करना भी निरर्थक

होगा, जब तक यह प्रदर्शित न किया जाए कि उक्त अनुच्छेद दो व्याख्याओं के लिए सक्षम है। यदि अनुच्छेद 9 में प्रयुक्त शब्द उस व्याख्या के लिए युक्तियुक्त रूप से सक्षम हैं जिसका प्रतिपादन अपीलकर्ता करता है, तो उसके लिए यह तर्क प्रस्तुत करना संभव हो सकता है कि वैकल्पिक व्याख्या, जो दस्तावेज को न्यायालय शुल्क के प्रभार के अधीन करती है, स्वीकार नहीं की जानी चाहिए; किन्तु यदि अनुच्छेद में प्रयुक्त शब्द केवल एक ही व्याख्या के लिए युक्तियुक्त रूप से सक्षम हैं, तो उदार व्याख्या का सिद्धांत पूर्णतः अनुपयुक्त होगा। अनुच्छेद 9 का प्रभाव न्यायसंगत, निष्पक्ष अथवा उचित है या नहीं, यह प्रश्न अप्रासंगिक होगा यदि अनुच्छेद का अर्थ स्पष्ट और निर्विवाद है। जैसा कि लॉर्ड ब्लैकबर्न ने *कोल्टनेस आयरन कम्पनी बनाम ब्लैक* ([1]) में कराधान संबंधी प्रावधान की व्याख्या करते हुए कहा था, "जब अभिप्राय पर्याप्त रूप से प्रदर्शित हो जाता है, तब यह अनुमान लगाना व्यर्थ है कि कर अधिरोपित करने की सबसे न्यायसंगत और समतामूलक पद्धति क्या होती।" इसलिए अब अनुच्छेद 9 की ओर ध्यान देना और यह निर्धारित करना आवश्यक है कि उसकी निष्पक्ष तथा युक्तियुक्त व्याख्या के अनुसार उसका क्या अर्थ है।[1]

अनुसूची 1 का अनुच्छेद 6 किसी ऐसे निर्णय अथवा आदेश की प्रति या अनुवाद पर न्यायालय शुल्क के भुगतान से संबंधित है जो डिक्री न हो अथवा डिक्री का प्रभाव न रखता हो, जबकि अनुच्छेद 7 डिक्री की प्रति से संबंधित है। यह स्पष्ट है कि जिन आदेशों से वर्तमान अपील में हमारा संबंध है, वे न तो अनुच्छेद 6 के अंतर्गत आते हैं और न ही अनुच्छेद 7 के अंतर्गत। अनुच्छेद 9 इस प्रकार है :

---

1 (1) (1880-81) 6 ए. सी. 315, 330।

सं.		उचित शुल्क
9. किसी राजस्व अथवा न्यायिक कार्यवाही या आदेश की प्रति, जिसके लिए इस अधिनियम द्वारा अन्यथा उपबंध न किया गया हो, अथवा किसी लेखे, विवरण, प्रतिवेदन या उसके समान किसी दस्तावेज की प्रति, जो किसी दीवानी, आपराधिक अथवा राजस्व न्यायालय या कार्यालय से, अथवा किसी प्रभाग के कार्यपालिका प्रशासन के भारसाधक किसी मुख्य अधिकारी के कार्यालय से प्राप्त की गई हो।	प्रत्येक 360 शब्दों के लिए अथवा 360 शब्दों के किसी अंश के लिए।	आठ आना।

यह स्पष्ट है कि किसी आपराधिक न्यायालय से प्राप्त किसी कथन, प्रतिवेदन अथवा उसके समान किसी दस्तावेज की प्रति का उपबंध अनुच्छेद 9 के उत्तरार्द्ध भाग में स्पष्ट रूप से किया गया है; अतः यह तर्क स्वीकार करना असंभव होगा कि आपराधिक न्यायालयों की कार्यवाहियाँ अनुसूची । के प्रासंगिक अनुच्छेदों के क्षेत्राधिकार से पूर्णतः बाहर हैं। यदि किसी आपराधिक न्यायालय में दिए गए कथन की प्रति दायर की जाती है, तो उस पर अनुच्छेद 9 द्वारा विहित न्यायालय शुल्क लगाया जाना आवश्यक होगा; इस स्थिति का विवाद नहीं किया गया है। यह भी विवादित नहीं किया जा सकता कि आपराधिक न्यायालय की कार्यवाही एक

न्यायिक कार्यवाही है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4, उपधारा (म), न्यायिक कार्यवाही को ऐसी किसी भी कार्यवाही के रूप में परिभाषित करती है जिसके दौरान साक्ष्य विधिपूर्वक शपथ पर लिया जाता है अथवा लिया जा सकता है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि किसी आपराधिक कार्यवाही में पारित आदेश एक न्यायिक कार्यवाही में पारित आदेश है, और यह सर्वसम्मत है कि वर्तमान अपील के समान आदेशों के लिए अधिनियम में अन्यथा कोई उपबंध नहीं किया गया है। हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया कि संहिता की धारा 107 के अधीन कार्यवाहियों में अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय आदेश नहीं हैं अथवा न्यायिक कार्यवाही का भाग नहीं बनते। इसलिए, यदि किसी आपराधिक कार्यवाही में दिए गए आदेश अथवा निर्णय की प्रति उच्च न्यायालय में दायर किए जाने के लिए अभिप्रेत है, तो वह स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 9 के प्रावधानों को आकर्षित करती है। अनुच्छेद 9 में प्रयुक्त शब्द स्पष्ट और निर्विवाद हैं, और हमारे मत में उनकी निष्पक्ष तथा युक्तियुक्त व्याख्या केवल एक ही निष्कर्ष की ओर ले जाती है, और वह यह है कि आपराधिक निर्णयों अथवा आदेशों की प्रतियों पर अनुच्छेद 9 द्वारा विहित न्यायालय शुल्क मुद्रांक लगाया जाना आवश्यक है। यही दृष्टिकोण उच्च न्यायालय ने ग्रहण किया है, जो कई वर्षों से उच्च न्यायालय में प्रचलित प्रथा के अनुरूप है। हम संतुष्ट हैं कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण तथा वहाँ प्रचलित प्रथा अनुच्छेद 9 के प्रावधानों द्वारा पूर्णतः उचित ठहराई जाती है। यह प्रश्न त्रावणकोर-कोचीन उच्च न्यायालय के समक्ष *जेम्स पॉल अलेक्ज़ेन्डर बनाम जेम्स आर्थर एडवर्ड्स* ([1]) में उठाया गया था, जहाँ न्यायालय शुल्क अधिनियम के समतुल्य अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 10, की व्याख्या के संबंध में यही दृष्टिकोण अपनाया गया था।

हम यह भी जोड़ सकते हैं कि अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत इस तर्क में कुछ बल है कि अनुच्छेद 9 द्वारा विहित न्यायालय शुल्क कभी-कभी अभियुक्त व्यक्तियों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सकता है; किन्तु यह नीति का विषय है जिससे हमारा कोई संबंध नहीं है। तथापि, विधानमंडल इस बात पर विचार कर सकता है कि क्या आपराधिक आदेशों तथा

निर्णयों की प्रतियों के संबंध में उपयुक्त प्रावधान अधिनियमित करना उचित नहीं होगा, जैसा कि मद्रास में किया गया है। मद्रास विधानमंडल ने अधिनियम V सन् 1922 द्वारा अधिनियम की अनुसूची । में अनुच्छेद 6-क अंतःस्थापित किया है, जिसके द्वारा आपराधिक न्यायालय के किसी निर्णय अथवा आदेश की प्रति या अनुवाद के लिए 8 आना का एक समान न्यायालय शुल्क विहित किया गया है।

परिणामस्वरूप, अपील विफल होती है और खारिज की जाती है।

अपील खारिज

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।